धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा

औषधी विवरण पुस्तिका

ग्रीष्म ऋतु विशेषांक

ग्रीष्म ऋतु (अंग्रेजी महीने मई तथा जून) बल के क्षय होने का ऋतु है। भारत के अधिकांश प्रदेश में गरमी में तापमान बहोत ज्यादा बढ़ जाता है। कुछ प्रदेशों में अधिकतम तापमान पैतालीस डिग्री सेल्सियस से भी ज्यादा हो जाता है। भारत कृषिप्रधान देश होने के कारण खेती के कामों की शुरुआत गरमी के दिनों से होती है। अत: धूप के समय घरमें रहना जब की जरुरी होता है, तब भी अधिकतर लोगों को ऐसा करना सम्भव नहीं होता। इसी कारण लोगों को कड़ी धूप का सामना करना पडता है।

धूप में काम करने से लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। अति उष्णता के कारण शरीर मे जलीय अंश कम हो जाता है। जलांश कम होने से जो स्रोतस् सामान्यत: दुष्ट होते हैं, वह है उदकवह स्रोतस्, स्वेदवह स्रोतस् तथा मूत्रवह स्रोतस्। अतिस्वेद प्रवृत्ति (अधिक पसीना आना), तृष्णा (अधिक प्यास लगना), गलशुष्कता (गला सूख जाना), अंगदाह, विशेषत: नेत्रदाह तथा शिरोदाह, मूत्राल्पता (मूत्रोत्पत्ति कम होना), मूत्रदाह, आदि स्रोतोदुष्टि लक्षण दिखाई देते हैं। यदि जलांश कम होने की तुरंत चिकित्सा न की जाए तो लु लगना (heat stroke) जैसे गंभीर लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

ग्रीष्म ऋतु की तीक्ष्ण धूप के कारण वात तथा पित्त दोष प्रकूपित हो जाते है। ग्रीष्म ऋतु के इस उष्ण गुण से राहत दिलाने हेतु आयुर्वेद अनेक अन्नपदार्थ तथा औषधियों का विकल्प देता है।

औषधी विवरण पुस्तिका के इस अंक में पहले बताए स्रोतसों के दुष्टि होने से उत्पन्न हुए लक्षण तथा व्याधियों की चिकित्सा में उपयुक्त कल्पों का विवरण किया गया है। आरोग्यवर्धनी, प्रवाल पंचामृत, सूतशेखर, चंद्रप्रभा (लोह शिलाजतु युक्त), शीतसुधा, सुवर्ण (स्वर्ण) भस्म, प्रवाल भस्म, श्वेत पर्पटी और तारगर्भ पोट्टली इन कल्पों का ग्रीष्म ऋतु में दुष्ट हुए स्रोतसों पर होने वाले कार्य तथा उनके सामान्य कार्य का विवेचन इस अंक में किया है।

औषधी विवरण पुस्तिका के वसंत ऋतु के अंक के प्रति आपकी प्रंशसा के लिए हम आपके आभारी है। आशा है की 'औषधी विवरण पुस्तिका २०१९' ग्रीष्म ऋतु अंक भी आपको पसंद आयेगा। इस अंक के प्रति आपकी राय/प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

धन्यवाद!

प्रवाल भस्म

रसतरंङ्गिणी २३/१३४-१३५
एस्.डी.एस्. मोनोग्राफ क्र.- ०२००४१

प्रवाल इस लाल रंग के रत्न से निर्मित यह भस्म है। प्रवाल यह उत्तम पित्तशामक द्रव्य होने से पित्त विकृतिजन्य विकारों में विशेष फायदेमंद सिद्ध होता है। प्रवाल को शोधन करने पर पुटन संस्कार द्वारा उसकी भस्म तैयार की जाती है। पुटन संस्कार होने के पश्चात् भी प्रवाल में शीत गुणधर्म वैसे ही शेष रहता है। भस्म होने के पश्चात् वह पचने में आसान हो जाता है, लेकिन पित्त शमन में भी उतनाहि असरदार होता है। इसीलिए जहाँ पर पित्त की विदग्धावस्था होते हुए अग्निमांद्य भी रहता है, वहाँ पर प्रवाल पिष्टी से बेहतर लाभ प्रवाल भस्म के प्रयोग से मिलता है।

अम्लपित्त की सामावस्था ठीक होने के बाद की अवस्था में पित्त शमन के लिए प्रवाल भस्म का प्रयोग हितकर साबित

होता है। प्रवाल भस्म के प्रयोग से हृल्लास, उरः एवं उदर दाह, भ्रम, मुखशोष आदि लक्षणों में राहत मिलती है।

पित्तं विदग्धं अगुणैःविदध्यादाशु शोणितम्। अर्थात् विदग्ध हुए पित्त के कारण रक्त भी दूषित होता है। पित्त के बढे हुए उष्ण, तीक्ष्णादि गुण रक्त को दूषित करते हुए रक्तपित्त जैसे लक्षणों को उत्पन्न करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में वातावरण में बढी उष्णता के कारण तथा शरद ऋतु में पित्त प्रकोप के कारण पित्त दुष्ट होकर रक्तपित्त को अवश्य उत्पन्न करते हैं। इस अवस्था में पित्त के उष्ण, तीक्ष्णादि गुणों का शमन कर रक्तप्रसादन करने का कार्य प्रवाल भस्म करता है। रक्तस्तंभक गुणयुक्त होने से मूत्रगत एवं गुदगत रक्तस्राव को रोकने एवं योनिगत रक्तस्राव का नियमन करने में प्रवाल भस्म उत्तम गुणकारी सिद्ध होता है।

पित्तदुष्टी के कारण कई बार हस्त पाद तल दाह, नेत्रदाह, भ्रम, नेत्रआरक्तता आदि लक्षण भी दिखाई देते हैं। इन लक्षणों के साथ अग्निमंद रहते प्रवाल भस्म का प्रयोग लाभ देता है।

ग्रीष्म ऋतु में जब अग्निमांद्य की अवस्था रहती है, प्रवाल भस्म का प्रयोग शीतसुधा के साथ करने पर निश्चित् रुप से लाभकारी सिद्ध होता है।

सुवर्ण (स्वर्ण) भस्म

भारत भैषज्य रत्नाकर ५/८३५७
एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. ०९०००१४

सभी धातुओं में श्रेष्ठ ऐसे सुवर्ण का प्रयोग रसायन हेतु प्राचीन काल से किया जा रहा है। सुवर्ण का प्रयोग आज के युग में भस्म स्वरुप में करना ही जरुरी है, क्योंकि इस पर पुटन संस्कार द्वारा होने वाले अग्निसंस्कार के कारण यह पचने एवं सात्मिकरण हेतु आसान हो जाता है।

सुवर्ण (स्वर्ण) भस्म के गुणधर्मों का वर्णन रसतरंगिणीकारने निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

स्वर्णं स्निग्धं मधुरमधुरं वृष्यमायुस्यमग्र्यं
वर्ण्यं बल्यं विषमज्वरहरं त्वन्त्रशोषक्षयघ्नम्।
रुच्यं पुण्यं पवनशमनं दीपनञ्चातिकेश्यं
हन्यादेतन्नियतमचिरादेव रोगानशेषान्। र. त. १५/७०

इस सूत्र को ध्यान से देखने पर यह मालूम होता है, कि सुवर्ण भस्म का प्रयोग स्वास्थ्य को उत्तम रखने तथा रोगपीडित शरीर को रोगमुक्त करना, इन दोनों कार्योंके लिए होता है। दीर्घकाल तक रोग से पीडित एवं जटील विकारों की चिकित्सा में सुवर्ण भस्म या सुवर्ण कल्पों का प्रयोग उत्तम लाभकर होता है। दीर्घ काल तक शरीर में रहने वाले विकार का परिणाम शरीर के धातुघटकों में क्षती उत्पन्न होने में होता है। इस क्षती अथवा स्रोतसों में उत्पन्न वैगुण्य को दूर करने के लिए उत्तम रसायन द्रव्य की आवश्यकता होती है। सुवर्ण भस्म यह एक ऐसा रसायन द्रव्य है जिसका प्रयोग स्रोतोगामी अन्य द्रव्य के साथ करने पर उन स्रोतस् पर रसायन कार्य करता है।

वृक्क यह भी शरीर का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवयव है। वृक्क के कार्य प्रणाली को शरीरस्थ प्रकुपित दोषों के कारण हानी पहुँचने से अत्ययिक अवस्था भी उत्पन्न हो सकती है। कभी

कभी शरीर में सेवन किए गये दूषित घटकों के असर से या अश्मरी, जिवाणू संसर्ग जैसे हेतुओं के कारण वृक्कों की प्रणाली पर भी बुरा असर होता है और उनकी आयु कम होने लगती है। यही वजह है, कि आज वृक्क विकृतिजन्य विकार अधिक मात्रा में दिखाई देने लगे हैं। यदी किसी कारणवश वृक्क या मूत्रवह प्रणाली पर बुरा असर होने की आशंका हो तो मूत्रवह स्रोतस् पर कार्य करने वाले या गामित्व रहने वाले द्रव्यों के साथ सुवर्ण भस्म का प्रयोग करने पर वृक्क के साथ संपूर्ण मूत्रवह स्रोतस् पर उत्तम रसायन कार्य होता है। मूत्र निर्मिती करने वाले प्रणालीयों की क्षती दूर होकर उनका कार्य सुचारु रुप से शुरु रहता है।

सुवर्ण भस्म उत्तम कांतीवर्धक, वर्ण्य होने से त्वचापर विशेष कार्यकारी होता है। गर्भावस्था में जिस प्रकार दूध पर मलाई जम जाती है, उसी प्रकार शरीर पर त्वचा का निर्माण होता है। उत्तम वर्ण, कांती एवं स्वस्थ त्वचा की प्राप्ति के लिए गर्भिणी अवस्था में ही सुवर्ण भस्म का प्रयोग सारिवा जैसे वर्ण्य द्रव्य के साथ करने से लाभ मिलता है। जन्म के पश्चात् भी आयु, बुद्धि आदि के साथ त्वचा का स्वास्थ्य उत्तम रखने में सुवर्ण भस्म लाभकर होता है। जिन व्यक्तियों में त्वचा रोग बार बार उत्पन्न होते हैं या अधिक काल तक शरीर में स्थित हैं, इनकी चिकित्सा के लिए सुवर्ण भस्म का प्रयोग अन्य कल्पों के साथ लाभकर होता है। त्वचा का स्वास्थ्य बढाने में सुवर्ण भस्म मदद करता है, जिससे बार बार त्वचारोग की उत्पत्ति को रोका जा सकता है।

सूतशेखर रस (सादा)

भारत भैषज्य रत्नाकर – ५/८२६१
एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. ०८००२१४

पित्त की मात्रा नाम से प्रचलित सूतशेखर रस यह कल्प पित्त की सामावस्था में उपयुक्त होने वाली एक अत्यंत महत्वपूर्ण औषधी है। इस कल्प का कार्य अधिकतर अन्नवह स्रोतस् पर होता है। साथ ही अन्नवह स्रोतस् से जुडे अन्य स्रोतसों पर भी सूतशेखर रस कार्यकारी होता है।

ग्रीष्म ऋतु में वातावरण में उष्मा बढने लगती है, जिससे शरीर में पित्त दुष्टि होने लगती है। साथ ही जाठराग्नि भी मंद हुई रहती है, जिससे आहार का उचित पचन नहीं हो पाता। अपचित आहार एवं प्रकुपित पित्त के कारण अम्लपित्त की उत्पत्ति होती है। अम्लपित्त की इस सामावस्था में दूषित पित्त के पाचन हेतु सूतशेखर रस उपयुक्त होता है।

पित्त की सामावस्था में अम्लोद्गार, अम्लास्यता, हृल्लास, छर्दि, उदर दाह, उदरशूल आदि लक्षण होते है। सूतशेखर रस में स्थित त्रिकटु, शंख भस्म, ताम्र भस्म, भृंगराज आदि घटक पित्त पाचन में सहायता करते हैं जिससे आमावस्था

दूर होने में सहायता होती है। यकृत् से उत्तम गुणयुक्त पित्त का स्राव होने से अग्निमांद्य दूर होता है।

पित्तदुष्टिजन्य विकारों के कारण दूषित हुए ग्रहणी को ठीक करने के लिए भी सूतशेखर उपयुक्त होता है। ग्रहणी या आंत्र में उत्पन्न शोथ या व्रण के कारण कभी कभी उदर शूल होकर छर्दि होने लगती है, तो कई बार द्रवमलप्रवृत्ति होने लगती है। सूतसेखर रस में उपस्थित शोधित कनक बीज, बिल्व मज्जा, कर्चूर आदि पाचक, ग्राही एवं शूलघ्न द्रव्यों के कारण पित्तजन्य छर्दि तथा अतिसार में उपशय मिलता है।

शरीर में सामपित्त की उत्पत्ति के बाद यदी उसका पाचन नहीं किया गया तो यह पित्त अन्य स्थान में स्थित पित्त को दूषित कर लक्षणों की उत्पत्ति करता है। प्रकुपित हुआ पित्त स्वेदवह स्रोतस् को दूषित करने से स्वेदाधिक्य, दुर्गंधित स्वेदप्रवृत्ति जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। कई बार पसिने के पीले धब्बे, पहने हुए वस्त्रोंपर भी नजर आने लगते हैं। इस अवस्था में कोष्ठस्थ सामपित्त का पाचन कर उसका अनुलोमन करने पर स्वेदवह स्रोतस् के लक्षणों में भी राहत होती है। इस कार्य के लिए सूतशेखर रस उपयुक्त होता है।

इसी तरह प्रकुपित हुए पित्त द्वारा मूत्र प्रभावित होने से मूत्रदाह, दुर्गंधित एवं अत्यंत पीत वर्णी मूत्र की प्रवृत्ति होने लगती है। कभी कभी मूत्रमार्ग में दाह, शोथादि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। इन लक्षणों में राहत मिलने हेतु सूतशेखर रस का प्रयोग लाभकर सिद्ध होता है।

जैसे कि प्राणवह स्रोतस् के दुष्टि हेतुओं में बताया गया है, अन्य स्रोतस् के दुष्ट होने के कारण प्राणवह स्रोतस् दुष्ट होता है। बहुत बार अन्नवह स्रोतस् की दुष्टि होने से प्रकुपित हुए दोष प्राणवह स्रोतस् को दूषित करते हैं। पित्त दोष दूषित होने से उत्पन्न श्वास, कास आदि विकारों में सूतशेखर रस उपयुक्त होता है। अम्लपित्तजन्य कास और शरद ऋतु में उत्पन्न कास में सूतशेखर रस उपयुक्त है तथा शुष्ककास, श्वास उरोविकार, गलसरंभ, नासामार्ग आरक्तता एवं शोथ, गिलायु स्थान पर आरक्त वर्णता उसके साथ में ज्वर रहते सूतसेखर रस कारगर सिद्ध होता है।

चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त)

भारत भैषज्य रत्नाकर २/१७३९
एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०५०००१४

चंद्रप्रभा इस शब्द का अर्थ होता है, चाँद की प्रभा - चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) संपूर्ण शरीर को पूर्ण चंद्र के समान कान्तिमान बनाती है। चंद्रप्रभा यह नाम इसमें उपस्थित प्रथम घटक द्रव्य अर्थात् शटी के आधार पर दिया हुआ है। चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) में शटी, वचा, मुस्ता, भूनिम्ब, देवदारु, हरिद्रा, अतिविषा, दारुहरिद्रा, पिप्पलीमूल, चित्रक, त्रिवृत्, दन्ती, तेजपत्र, त्वक्, एला, वंशलोचन, धान्यक, त्रिफला (हरीतकी, बिभीतक, आमलकी), चव्य, विडंग, गजपिप्पली, सुवर्णमाक्षिक भस्म, त्रिकटु (शुण्ठी, पिप्पली, मरिच), सज्जीक्षार, यवक्षार, सैंधव, सौवर्चल एवं बिडलवण आदि घटक द्रव्य उपस्थित रहते हैं तथा लोह भस्म, सिता (शर्करा), शोधित शिलाजतु एवं शोधित गुग्गुल आदि अन्य घटक द्रव्य भी इसमें उपस्थित होते हैं।

भारत भैषज्य रत्नाकर के **चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोग प्रणाशिनी।** इस सूत्र के अनुसार चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) शरीर में उत्पन्न सभी प्रकार के व्याधियों में उपयुक्त है। यह मूत्रवह, आर्तववह, शुक्रवह एवं मेदोवह स्रोतस् जैसे विभिन्न स्रोतसों पर कार्य करती है।

चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) का प्रयोग मूत्रवह स्रोतसों के सदाह मूत्रप्रवृति, कृतेऽप्यकृतसंज्ञता, सप्रवाहण मूत्रप्रवृत्ति, मूत्रशर्करा, मूत्राश्मरी इन विकारों में सबसे अधिक किया जाता है।

चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) खासकर शुक्रवह स्रोतस् दुष्टि से उत्पन्न मेहन ग्रंथि, आंत्रवृद्धि, अण्डवृद्धि के साथ शुक्र दुष्टि जैसे विभिन्न विकारों में उपयुक्त होती है।इंद्रिय शैथिल्य के कारण शीघ्र वीर्यपतन हो सकता है। कई बार तो स्वप्नदोष भी हो जाता है। इन अवस्थाओं में चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) उसके बल्य, वृष्य एवं रसायन कार्य से उपयुक्त साबित होती है। शोधित शिलाजित, शर्करा एवं लोह भस्म आदि घटक द्रव्य चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) को इन अवस्थाओं में असरदार साबित करते हैं।

पूयशुक्र के कारण दाह, नेत्रदाह, मूत्रदाह, वृषण एवं मेहन पर पिटिका जैसे लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी अवस्थाओं में पित्तशामक, जन्तुघ्न, दाहशामक एवं वृष्य कार्य से चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) का प्रयोग सहायक साबित होता है। यहाँ पर चंद्रप्रभा (लोह-शिलाजतुयुक्त) का प्रयोग चंदनासव, उशीरासव या शीतसुधा जैसे अनुपान के साथ किया जा सकता है। क्षीण शुक्र के कारण उत्पन्न वंध्यत्व में

चंद्रप्रभा वटी (लोह–शिलाजतुयुक्त) का वृष्य कार्य अधिक बेहतर दिखाई देता है।

स्थौल्य के अष्टदोषों में से एक है, कृच्छ्रव्यवायता। चरकाचार्यजीने इसका वर्णन **शुक्राबहुत्वान्मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाच्च कृच्छ्रव्यवायता।** – च.सू. २१/४ इस सूत्र द्वारा किया है। स्थूल व्यक्ति में शुक्रमार्ग अपाचित मेदोधातु से आवृत्त होने के कारण कृच्छ्रव्यवायता उत्पन्न होती है। चंद्रप्रभा मे उपस्थित द्रव्य मुख्यत: मुस्ता, लोह भस्म, देवदारु, किरातितिक्त, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रिफला, शोधित शिलाजित एवं शोधित गुग्गुल चंद्रप्रभा (लोह–शिलाजतुयुक्त) को अपाचित मेदोधातु के पाचन में उपयुक्त बनाते हैं। साथ ही यह आमपाचक एवं क्लेदशोषक कार्य करती है। अधिक लाभ हेतु इसका प्रयोग अश्वगंधारिष्ट या कोष्ण जल जैसे अनुपान के साथ अपान काल में किया जा सकता है।

प्रवाल पंचामृत (सादा)

भारत भैषज्य रत्नाकर ३/४४६८
एस्.डी.एस्. मोनोग्राफ क्र.– ०५०००८४

प्रवाल पंचामृत (सादा) यह कल्प प्रवाल भस्म, शंख भस्म, शौक्तिक भस्म एवं कपर्दिक भस्म को एकत्रित कर उन्हें अर्क क्षीर की भावना देकर तैयार किया जाता है। अर्क क्षीर की भावना देने से प्रवाल पंचामृत अधिक तीक्ष्ण और पाचक बनता है और यह कफवातघ्न होता है। प्रवाल पंचामृत (सादा) में स्थित यह द्रव्य आयुर्वेद रसशास्त्र के सुधावर्ग में समाविष्ट होते हैं। इन द्रव्यों पर पुटन संस्कार कर भस्म स्वरुप में इनका प्रयोग इस कल्प में किया गया है। यह सभी द्रव्य अन्नवह स्रोतस् पर दीपन, पाचन तथा उत्तम पित्तशमन का कार्य करते हैं।

प्रवाल पंचामृत (सादा) आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहावृद्धि,

कास, श्वास, अग्निमांद्य एवं निम्नलिखित सूत्र में वर्णित अन्य कफ – वातज व्याधि में उपयुक्त है।

आनाहगुल्मोदरप्लीहकासश्वासाग्निमांद्यान्कफमारुतोत्थान्।
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम्।।
मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरीम्। भा.भै.र. ३/४४६८

प्रवाल पंचामृत (सादा) यह अजीर्ण, उद्गार, हृदय विकार, ग्रहणी, अतिसार एवं प्रमेह जैसे विकारों में भी उपयुक्त है।

प्रवाल पंचामृत (सादा) का प्रयोग पित्त की सामावस्था में किया जाता है। पित्त की सामावस्था में उदर एवं उरःदाह, उल्टी की संवेदना, पेट फूलना, पेट भारी रहना एवं मुँह का स्वाद अम्ल रहना यह लक्षण रहते प्रवाल पंचामृत (सादा) फायदेमंद सिद्ध होता है। **क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहित:।** च.चि. २४/११४, इस न्याय से प्रवाल पंचामृत (सादा) में रहने वाले क्षार सदृश भस्म द्रव्य अम्ल रस को मधुर रस में रुपांतरित करते हैं। इससे अम्लपित्त के लक्षणों में राहत मिलती है।

पित्त का उष्ण, तीक्ष्ण गुण अधिक मात्रा में बढ जाता है, तब उसका असर अन्नवह स्रोतस् के साथ अन्य स्रोतस् पर होने लगता है। इसीकाही एक परीणाम अन्नवह स्रोतस् में आहार के पचन के बाद निकलने वाले मल मूत्रादिपर भी होता है। दूषित पित्त का असर मूत्र पर होने से मूत्रमार्ग दाह, क्षोभ आदि लक्षण दिखाई देते हैं और यदी उसका असर स्वेद पर हुआ तो स्वेददौर्गंध्य जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। प्रवाल पंचामृत (सादा) के प्रयोग से पित्त का उष्ण, तीक्ष्ण गुण कम होने से इन लक्षणों में उत्तम लाभ मिलता है।

प्रवाल पंचामृत (सादा) प्रमेह में अपाचित क्लेद का पाचन

करने में सहायता कर बहूमूत्रता जैसे लक्षणों से राहत देता है। कफज मूत्राश्मरी में भी यह उपयुक्त साबित होता है।

प्रवाल पंचामृत (सादा) बालकों में उत्पन्न अस्थिक्षय में विशेष लाभकर साबित होता है, क्योंकि यह अस्थिधातु के पोषण में सहायता करता है। साथ ही यह कल्प वार्धक्य अवस्था में उत्पन्न अस्थिक्षय में भी असरदार होता है।

श्वेत पर्पटी

सिद्धयोगसंग्रह

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०८०१८६

आयुर्वेदीय रसशास्त्र में चार प्रकार के रसायन कल्पों का समावेश होता है, जिसमें से एक है पर्पटी कल्पना। पर्पटी यह एक ऐसी विशिष्ट कल्पना है, जिसमें तैयार औषधी पतली पपडी के स्वरुप में प्राप्त होती है। पर्पटी बनाते समय अधिकतर कज्जली का प्रयोग किया जाता है, लेकिन श्वेत पर्पटी यह ऐसा पर्पटी कल्प है, जिसमें कज्जली का प्रयोग नहीं होता। श्वेत पर्पटी कलमी सोरा, फिटकरी एवं नवसागर का प्रयोग कर तैयार की जाती है लेकिन इसके निर्माण की प्रक्रिया, पर्पटी विधि जैसे ही होती है।

श्वेत पर्पटी को शीतल या क्षार पर्पटी भी कहा जाता है। इसमें उपस्थित फिटकरी कषाय–अम्ल रसात्मक, विषघ्न, व्रणघ्न एवं त्रिदोषशामक है। नवसागर यह क्षारीय पदार्थ है। लघु, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अग्निदीपक एवं पाचक है। यह गुल्म, प्लीहा, मुखशोष एवं आध्मान में उपयुक्त है, साथ ही कफनाशक भी है। कलमी सोरा मूत्रल, पित्तनिस्सारक एवं अग्निदीपक है।

ग्रीष्म ऋतु में शरीर में जलांश की कमी होने के कारण शरीर से मूत्र स्वरुप में बाहर जाने वाले द्रवांश का पुनर्शोषण होकर मूत्र की मात्रा कम होने लगती है जिससे सकष्ट मूत्रप्रवृत्ति एवं सदाह मूत्रप्रवृत्ति जैसे विकारों से पीडित लोग अधिक संख्या

में पाए जाते हैं। इसके बावजुद भी योग्य मात्रा में जल का सेवन नहीं किया गया तो मूत्र में स्थित पार्थिव घटक अधिक काल तक जमा रहने से मूत्रशर्करा या मूत्राश्मरी उत्पन्न हो सकती है। श्वेत पर्पटी के क्षारीय घटक द्रव्य मूत्र की बढी हुई अम्लीयता को मधुरता में परिवर्तित कर अम्लीयता कम करने में सहायक होते हैं। इसलिए यह अम्लीय मूत्र (Acidic urine) के कारण उत्पन्न सदाह एवं सकष्ट मूत्रप्रवृत्ति को कम करने में सहायक होती है।

श्वेत पर्पटी में उपस्थित मूत्रल एवं व्रणघ्न घटक द्रव्य पित्तप्रकोप से उत्पन्न क्षोभ कम करने में सहायता कर मूत्र की मात्रा बढाने में उपयुक्त होते हैं। श्वेत पर्पटी वातानुलोमक होने से मूत्राश्मरी से संबंधित शूल कम करने में सहायक होती है।

श्वेत पर्पटी मूत्रवह स्रोतस् में संचित क्षार एवं क्लेद को शरीर के बाहर निकालने में सहायक साबित होती है।

फिटकरी व्रणघ्न होने से श्वेत पर्पटी को मूत्रशर्करा या मूत्राश्मरी के संचलन से गविनी के अभ्यंतर भाग या भित्ति में उत्पन्न व्रणों का रोपण करने में उपयुक्त बनाती है। इसीलिए मूत्रवह स्रोतस् के विकारों में श्वेत पर्पटी का प्रयोग अत्यंत लाभकर होता है।

तारगर्भ पोट्टली

रसयोगसागर २ / पोट्टलीरहस्य २
एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. २६०००५

रसशास्त्र का विकास खल्वी रसायन से शुरु होकर पर्पटी रसायन, कुपीपक्व रसायन होते हुए पोट्टली निर्मिती तक समाप्त होता है। इनमें से पोट्टली कल्प के निर्माण में अग्नि का संस्कार सबसे अधिक होने से यह कल्प सर्वाधिक कार्यकारी होते हैं। इसीलिए वह अल्प मात्रा में प्रयुक्त किए जाते हैं। यह कल्प एक बडी गोली के स्वरुप में उपलब्ध होती है और इसे साणिका पर घिसकर प्रयोग में लाया जाता है।

वैसे तो इन कल्पों का प्रयोग व्याधि की अत्यंत गंभीर एवं अत्ययिक अवस्था होने पर किया जाता है। लेकिन कई विकारों में रुग्ण उस अवस्था तक न पहुँचे इसलिए पहले से ही इन कल्पों का प्रयोग किया जाता है। व्याधि अनुसार विविध पोट्टली कल्पों का वर्णन आचार्यों ने किया है।

तारगर्भ पोट्टली का निर्माण रससिंदूर, शोधित गंधक, सुवर्ण भस्म तथा रजत भस्म इन घटकों से होता है। रससिंदूर मूलतः एक कुपिपक्व रसायन होने से पहले से ही अग्निसंस्कारित होता है। इसीलिए इसका प्रयोग कर तैयार की हुई तारगर्भ पोट्टली अधिक सूक्ष्म स्रोतोगामी एवं कार्यकारी होती है। रससिंदूर यह एक उत्तम योगवाही कल्प होने से पोट्टली की कार्यकारिता को और भी बढाता है। रससिंदूर का प्रयोग विशेष रुप से कफस्थानों पर होता है। वृक्क यह एक ऐसाही स्थान है, जो मूत्रमार्ग से अतिरिक्त क्लेद का निर्हरण करते रहता है। इस कार्य को करते हुए कभी कभी वृक्क एवं अभ्यंतर प्रणालियों में विकृती उत्पन्न होने लगती है। कभी कभी क्लेद निर्मिती इतने अधिक मात्रा में शरीर में उत्पन्न होती है, कि उससे वृक्क एवं उसकी प्रणालियों से उनका पूरी तरह से निःस्सरण नहीं हो पाता। इसके परिणाम स्वरुप वृक्क में क्लेद संचिती होकर उसके कार्यपर उसका प्रभाव होने से उसमें शोथ की अवस्था उत्पन्न होने लगती है। वृक्कों की कार्यहानी पर यदि योग्य समय पर उपचार नहीं किया तो अत्ययिक अवस्था उत्पन्न होने में समय नहीं लगता। रुग्ण में ऐसे लक्षणों को देखने पर तारगर्भ पोट्टली का प्रयोग अल्प मात्रा में चंद्रप्रभा या पुनर्नवासव जैसी दवाईयों के साथ करने से वृक्क को कार्यहानी से बचाया जा सकता है। सुवर्ण भस्म एवं रजत भस्म की उपस्थिती से मूत्रवह संस्थान के अवयवों पर उत्तम रसायन कार्य होता है। वृक्कों की तरफ आनेवाली रक्तवाहिनीयों को बल मिलने से वृक्क के रक्तसंवहन में सुधार आता है और इस वजह से मूत्राघात के लक्षणों से राहत मिलने में तारगर्भ पोट्टली मदद करती है।

रससिंदूर, रजत भस्म एवं सुवर्ण भस्म का कार्य मस्तिष्क एवं वातवाही सिराओं पर बल्य होने से पक्षाघात, अर्दित, मधुमेहजन्य वातनाडीविकृति में लाभकर होता है।

वातनाडीदौर्बल्य या बस्ति एवं संबंधित रचनाओं की विकृती के कारण मूत्रधारण करने की क्षमता में कमी होकर बूंद बूंद मूत्रप्रवृत्ति होना या बार बार मूत्र विसर्जन के लिए जाना जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन अवस्थाओं में अश्वगंधा, बला या विषतिंदुक जैसे द्रव्य के साथ तारगर्भ पोट्टली का प्रयोग करने पर नाडीसंस्थान को बल प्राप्त होकर इनकी धारण क्षमता बढने में सहायता होती है। इस तरह तारगर्भ पोट्टली कल्प मूत्रवह स्रोतस् पर प्रायः कार्य करता है।

धूतपापेश्वर

आरोग्यवर्धनी

भारत भैषज्य रत्नाकर १/४४८
एस्.डी.एस्. मोनोग्राफ क्र.–०८०००४४

आरोग्यवर्धनी यह ग्रंथोक्त कल्प एक उत्कृष्ट मलपाचक एवं मलशुध्दिकर योग है। कटुकी यह प्रमुख द्रव्य चित्रकमूल, शुध्द गुग्गुल आदि अन्य द्रव्यों के कुल मात्रा की ५०% मात्रा में लेकर आरोग्यवर्धनी तैयार की जाती है। सभी द्रव्यों को योग्य रुप से मिश्रित करने के बाद निम्ब पत्र स्वरस की भावना दी जाती है।

आरोग्यवर्धनी में उपस्थित द्रव्य प्राय: रुक्ष, उष्ण, लघु, पाचक एवं दीपक हैं। साथ ही आम, अतिरिक्त मेद, अपाचित क्लेद एवं कुष्ठ अर्थात् विविध त्वचा विकारों में लाभदेय होते हैं। आरोग्यवर्धनी उसके घटक द्रव्यों की तथा भावना द्रव्य की बदौलत पाचनी, दीपनी, ह्रद्य, मेदोविनाशिनी, मलपाचन तथा मलशुध्दि करानेवाली साबित होती है।

आरोग्यवर्धनी का उपयोग मुख्यत: कुष्ठ व्याधि अर्थात् विविध प्रकार के त्वचा विकारों में किया जाता है। ग्रंथ में वर्णन किए हुए **हन्ति कुष्ठान्यशेषत:।** इस सूत्र के अनुसार आरोग्यवर्धनी के प्रयोग से प्राय: सभी त्वचा विकारों की चिकित्सा निश्चित ही सफलता पूर्वक की जा सकती है।

ग्रहणी के कार्य में विकृति आने से मलावरोध उत्पन्न होता है। इस मलावरोध से ग्रहणी एवं पक्वाशयस्थित वात दोष की दुष्टि होती है। साथ ही पित्त एवं कफ दोष भी दुष्ट हो जाते हैं, और आगे जाकर सेंद्रिय विषार निर्माण हो जाते हैं। इन विषारों द्वारा रसादि धातु दुष्ट होकर कुष्ठ की निर्मिति होती है। उपस्थित द्रव्यों के कारण आरोग्यवर्धनी यह ग्रहणी एवं पक्वाशयस्थित विकृति दूर कर कुष्ठ में लाभदेय साबित होती है। कुष्ठ में आरोग्यवर्धनी का प्रयोग जनसामान्य में भी प्रचलित है। **'अधिकस्य अधिकं फलम्।'** इस उक्ति के अनुसार कुष्ठ व्याधि में आरोग्यवर्धनी का महामंजिष्ठादि काढ़ा के साथ प्रयोग करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

मलसंचय के कारण उत्पन्न होनेवाली बध्दकोष्ठ की अवस्था में कफादि दोषों की वृध्दि होती है। परिणाम स्वरुप में अग्नि

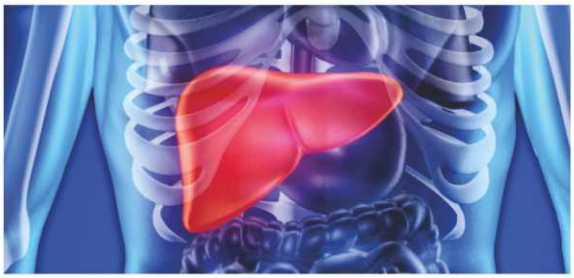

मंद हो जाती है। दूसरी ओर अन्न का ठिक तरह से पचन न होने पर रस रक्तादि धातु की निर्मिति में भी विकृति आ जाती है। ऐसी अवस्था में रक्त कणों की योग्य निर्मिति न होने से शरीर में जल धातु की वृध्दि होकर शोथ उत्पन्न होता है। साथ ही हृदय अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। इस समय आरोग्यवर्धनी का पुनर्नवासव के साथ किया प्रयोग लाभदायक साबित होता है।

आरोग्यवर्धनी वात, पित्त तथा कफ दोष की दुष्टी से उत्पन्न होनेवाले ज्वर में पाचन तथा दीपन कार्य करने से उपयुक्त साबित होती है।

आरोग्यवर्धनी मलादि घटकों का पाचन कर उस मल का जितने अंश में रुपान्तर योग्य हो उतना रुपान्तर कराती है। शेष मल को शरीर से बाहर निकालने में मदद करती है। यह कार्य स्थूल स्रोतस् से लेकर सूक्ष्म स्रोतसों तक होता दिखाई देता है।

आरोग्यवर्धनी यकृत् पर, जो कि रक्तवह स्रोतस् का मूलस्थान है, विशेष कार्यकारी साबित होती है। कटुकी की उपस्थिति के कारण आरोग्यवर्धनी यकृत् से पित्त का प्राकृत् स्राव करने में सहाय्यक होती है। अत: कामला व्याधि में आरोग्यवर्धनी उपयुक्त साबित होती है। रक्तवहस्रोतोदुष्टीजन्य व्याधि जैसे कुष्ठ, पिड़का, श्वित्र, दद्रु, पामा एवं व्यंग में आरोग्यवर्धनी का प्रयोग लाभदेय साबित होता है।

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये
© All Copy Rights Reserved

श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई – ४००००४. • फोन नं.:+९१–२२–६२३४ ६३००, २३८२ ५८८८
ई–मेल: healthcare@sdlindia.com • वेब: www.sdlindia.com

AVP-H/SDL-VT/GREESHMA/N/0418